47

# विज्ञान की प्रगति और मानव जीवन की उलझने

डॉ. भाउसाहेब रा. नळे,
हिंदी विभाग,
सुंदरराव सोलंके महाविद्यालय, माजलगाव.

विज्ञान कथा साहित्य पर शोध-कार्य करते समय मैंने पाया कि, अधिकांश विज्ञान कथकारों ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से विज्ञान-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आज हो रही खोज एवं अनुसंधान की गतिविधियों पर कुछ समय के लिए रोक लगाने की बात की है. जिसे पढकर लोगों ने तरह - तरह के तर्क - वितर्क लगाते हुए उन्हें परम्परावादी, विज्ञान विरोधी, सीर फिरा और प्रगति विरोधी होने का लेबल लगाना शुरू किया है. इसके लिए वे तर्क देने लगे हे कि, विज्ञान आज हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है. उसने हमारी जीवन शैली को सरल, सरस, सुंदर और आसान बनाया है. आज हमें विश्व के साथ चलने के लिए, उनकी बराबरी करने के लिए, अपनी सुरक्षा और आवश्यकता को पुर्ति के लिए विज्ञान की आवश्यकता है. उसके बिना हम अपनी प्रगति, उन्नति और विकास कर ही नहीं सकते. उनका तर्क गलत नहीं है, लेकिन वे विज्ञान का विश्व मानवता के साथ जुडा दूसरा पक्ष देखने का कष्ट उठा नहीं रहे. उसको देखे बिना विज्ञान कथाकारों को जनता की अदालत में खडा करने का काम किया जा रहा है. जो पूर्णतः गलत, अतार्किक, त्रस्तकारक और वास्तविक रूप से मानव प्रगति विरोधी है. जिसकी संतुलित चर्चा प्रस्तुत आलेख के माध्यम से करने का प्रयास किया है.

वर्तमान में हम देख रहे है कि, जितनी तेजी से मानव विज्ञान-प्रौद्योगिकी के सहारे कल्पनातीत सी प्रगती (भौतिक रूप से) करने लगा है, उतनी ही तेज गति से मानवीय मूल्य के स्तर पर उसमें गिरावट भी आने लगी है. लोगों में अपने सपनें, इच्छा, अकांक्षा और अधिकारों को प्राप्त करने के लिए तथा ब्लेकमेल, डर, आतंक और दहशत फैलाने के लिए विज्ञान के इस्तेमाल की प्रवृत्ति बढने लगी है. जिसके मूल में अनैतिकता का भाव जोर पकडने लगा है. इसके चलते विज्ञान की प्रगति और मानवी जीवन (मूल्याधिष्ठित) के बीच विसंगति की खाई लगातार बढती जा रही है. जब तक हम उन दोनों (विज्ञान की प्रगति और मानवीय मूल्य) के बीच समन्वय, संतुलन और सामंजस्य स्थापित कर नहीं पाते, तब तक उसके उचित काम के लिए कम गलत काम के लिए अधिक प्रयोग होने की अशंका आज संवेदन शील व्यक्ति को सताने लगी है. साहित्यकार भी एक संवेदनशील व्यक्ति और समाज का प्रहरी होता है. तो फिर समाज में हो रहे बदलावों से वह अपने आपको अलिप्त कैसे रख सकता है? उन्होंने देखा कि विज्ञान की भौतिक प्रगति और मानव का आंतरिक खोखलेपण (संवेदना और मूल्य के स्तर पर) के बीच न तो विज्ञान का उद्देश सफल हो रहा है, न मानव जीवन का. इस कारण उन्होंने विज्ञान की खोज पर कुछ समय के लिए रोक लगाते हुए नैतिकता और मानवीय मूल्य के पक्ष को मजबूत करने की बात की है. तो उसमें गलत क्या है?

विज्ञान कथकारों का मानना है कि, घ्मानव को मानव बने रहने के लिए उसे अब अपनी जिज्ञासु वृत्ति पर कुछ समय तक रोक लगानी चाहिए. क्योंकि मनुष्य को मनुष्य बने रहने के लिए जितने ज्ञान-विज्ञान की आवश्यकता है, अब वह सब उसके पास उपलब्ध हो चूका है. आज नए ज्ञान की तलाश के नाम पर वैज्ञानिक तथा विज्ञान के अध्येताओं के द्वारा केवल सृष्टि के हस्य को नंगा करने का काम किया जा रहा है. जिसकी वजह से एक ओर मानव में महत्वकांक्षा और जिज्ञासा का भाव लगातार बढने लगा है. तो दुसरी ओर उदारीकरण, भूमंडलीकरण और नीजीकरण का प्रभाव मानव में पल-प्रतिपल अनगिनत सपनें, इच्छा और अकांक्षाओं को भरने लगा है. जिसकी पूर्ति के चक्कर में आकर हमारी शासन तथा प्रशासन प्रणाली, शिक्षा प्रणाली और सामाजिक प्रणाली भ्रष्टता (अधपतन) के कीचड में धसती जा रही हैं. मानवी संवेदना, नैतिकता और चारित्र्य का नाश वर्तमान विनाश का कारण बन गया है. जिसके चलते मनुष्य की कीमत दो कौडी की बन गई है. यही हमारे सीर दर्द का प्रमुख कारण बन गया है. ऐसे में सभी देशों की सरकार के द्वारा विज्ञान की खोजों पर कुछ समय तक रोक लगाकर देशांतंगत समस्याओं को दूर करने के लिए सामाजिक प्रणालियों के सुधार पर बल देने का प्रयास करना चाहिए. मानवीय संवेदना और जीवन मूल्यों को पुनर्जीवित करने का प्रयास करना चाहिए. तब समाज जीवन में विज्ञान का सही इस्तेमाल होगा, जिससे मानवता सुखी हो सकती है. इस प्रकार विज्ञान की प्रगति तथा मानवी जीवन के बीच का अंतर कम करने के उद्देश्य से कथाकारों ने विज्ञान की प्रगति पर कुछ समय के लिए रोक लगाते हुए मूल्याधिष्ठित समाज की स्थापना पर अपने साहित्य के माध्यम से बल दिया है. जो गलत नहीं है.

आज इसी के चलते भविष्य में रही-सही मानवीय संवेदना



Scanned by CamScanner

लूप्त होने की अशंका संवेदनशील मानव को सताने लगी है. इसमें आयी जरासी कमी ने आज हमारे जीवन में अस्थिरता, असुरक्षितता, डर, भय, आतंक और विरोधाभस के वातावरण को भरना शुरू किया है. मूल्य के स्तर पर आ रही गिरावट के आज परिणाम इस तरह के है, तो भविष्य में कैसे होंगे? संवेदनशील व्यक्ति के चिंतन का विषय बन गया है. विज्ञान की इतनी प्रगति होने के बावजूद भी आज का मानव वास्तविक रूप से सुखी, समृध्द और परिपूर्ण नहीं बन पाया है. आज वह न स्वयं सुखी रहने लगा है, न दुसरों को सुख देने लगा है, न वह दुसरों के सुख को बर्दाश्त करने लगा है. आज अगर मानवी समाज की यह त्रासदी है, तो फिर आनेवाले समय में कैसी होगी? इसकी कल्पना करने मात्र से हमारे रोंगटे खडे हो जाते है. ऐसी स्थिति में विज्ञान की प्रगति (भैतिक) मानव में संवेदना, मूल्य, नैतिकता और चारित्र्य का भाव विकसित कर पायेगी क्या? अगर इसका उत्तर नहीं है, तो फिर हम विज्ञान की प्रगति के द्वारा किसकी प्रगति करना चाहते हैं? यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है. विज्ञान की हर खोज का लक्ष्य अगर मानव एवं सृष्टि के कल्याण का है, तो फिर इस प्रकार की प्रगति से वह उद्देश सफल हो पायेगा? इसका भी उत्तर अगर नहीं है, तो फिर हम क्यों विज्ञान का विकास करणा चाहते हैं? विज्ञान की प्रगति के द्वारा मानव को कौनसा सुख देना चाहते है? इसपर भी हमें सोचने की आवश्यकता है. विज्ञान और सामाजिक प्रणालियाँ गलत नहीं है. लेकिन जब उसका प्रयोग करनेवाले तथा प्रणालियों को कार्यान्वित करनेवाले गलत होंगे, तो उसके परिणाम तो गलत ही निकलेंगे न. इस लिए विज्ञानकथाकार संवेदनशीलता, नैतिकता, मूल्याधिष्ठित समाज व्यवस्था के निर्माण को प्राथमिकता देने लगे है. तो उसमें गलत क्या है? अपना काम बनता भाड में जाए जनता से हमारा काम अधिक दिन तक चल नहीं सकता. इसका एहसास विज्ञान कथाकार अपनी कथा के माध्यम से करने लगे है. जो सराहणीय है.

विज्ञान की आत्मा समानता और सार्वभौमिकता की होती है. आज इस प्रकार की आत्मा को मुठ्ठीभर (उद्योगपति, व्यवसायी, वैज्ञानिक) लागों ने अपने स्वार्थ में आकर कैद करना शुरू किया है. वे लोग विज्ञान-प्रौद्योगिकी की सेवा, सुविधा, साधन और वस्तुओं के निर्माण और वितरण के माध्यम से व्यक्ति केंद्रित अर्थव्यवस्था को बढावा देते हुए पूँजीवादी सभ्यता का विकास करने का प्रयास करने लगे है. जिसकी मार से एक ओर हमारी बुध्दि, विवेक और व्यक्ति स्वातंत्र्य कुण्ठित होने लगा है, तो दूसरी ओर आर्थिक दीवलियापण छाने लगा है. दोनों की मार से आहत आदमी की बुध्दि, विवेक और जेब खाली होने लगी है. ऐसे ही लोग व्यक्ति केंद्रित अर्थव्यवस्था से प्रेरित पूँजीवादी सभ्यता का आए दिन शिकार होने लगे है. उसने ही कर्ज की समस्या, हत्या, लूटपाट, धोकाधडी, भाई-भतिजा विवाद, रिश्तों की टकराहट के जैसे अनेक अपत्य को जन्म देकर निराशा और हताशा का वातावरण निर्माण करना शुरू किया है. जब ये आपत्य अपनी पुरी क्षमता के साथ बडे हो जायेंगे, तब क्या होगा? समय रहते हमें इसपर विचार करने की आवश्यकता है. विज्ञान कथाकारों ने इसपर विचार करते हुए तो विज्ञान की प्रगति पर कुछ समय के लिए रोक लगाने की बात की है.

हमें एक बात का निरंतर खयाल रखना चाहिए कि विज्ञान-प्रौद्योगिकी की प्रगति भौतिक संसाधनों के अभाव में हो नहीं सकती. आज वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर मुठ्ठीभर लोगों के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का बेतहाशा दोहन किया जा रहा है. जिसकी वजह से एक ओर प्राकृतिक संसाधनों (उर्जा संकट) के नष्ट होने की अशंका सताने लगी है, तो दूसरी ओर उसके अत्याधिक इस्तेमाल से प्रदुषण, असंतुलन, तापमाण वृध्दि, अतिवृष्टि, अकाल का साया सीर पर मंडराने लगा है. जिसके चलते बीमारी, भूखमारी, गरीबी, बेबसी और लाचारी से सामान्य लोगों का जीवन घिरने लगा है. मुठ्ठीभर लोग स्वार्थ में आकर प्रकृति का बर्बरिकरण करने लगे है और बेकसूर लोग उसके प्रकोप का शिकार होने लगे है. देश की सरकारें भी इस परिस्थिति के लिए एक ओर सामान्य लोगों को जिम्मेदार ठहराती हुई पेड-पौधों को लगाने का एलान करने लगी है, तो दूसरी ओर उद्योग-धंदों के नाम पर जंगलों को काटने की अनुमति देने लगी है. ऐसे में प्रकृति, मानवी जीवन और विज्ञान के बीच संतुन कैसे स्थापित किया जा सकता है? प्रकृति के विनाश के साथ पर्यावरण का भी विनाश होनेवाला है. इसको आज का मानव भूलने लगा है. जिसकी वजह से उसका प्रगति के नाम पर उठनेवाला हर कदम विनाश की ओर बढने लगा है. हमारे लिए प्रकृति और मानवीय जीवन विज्ञान से अधिक मौलिक है. इस कारण थोडा सा समय प्रकृति और मानव के बीच मित्रता का रिश्ता स्थापि करने के लिए लगा दिया, तो क्या फर्क पडनेवाला है? क्योंकि आज के वैज्ञानिक मूलभूत विज्ञान की खोज को लेकर कम उपयोजित विज्ञान को लेकर खोज करने में अधिक रूचि दिखाने लगे है. जिसकी वजह से उपर्युक्त परिदृश्य निर्माण होने लगा है. आज के वैज्ञानिकों ने न तो मानव को रहने लायक नए गृह की तलाश की है, न उसके होने की पुष्टि. उन्होंने न तो उर्जा के नवीनीकरण के कारगर उपाय ढूँढे है, न नजदिकी समय में वे हाथ आने की संभावना को व्यक्त किया है. (प्रयास जरूर हो रहा है, लेकिन सफलता की मात्र बहुत कम है.) ऐसे में वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर प्रकृति का होनेवाला वस्त्रहरण रोकने में ही मानवता की भलाई है. यही तो विचार विज्ञान कथाकार व्यक्त करने लगे है. जिसे समझने की आवश्यकता है.



Scanned by CamScanner

यह तो कुछ भी नहीं है. आज शरीर क्रिया विज्ञान (Physiology), जीव विज्ञान (Biology) और कम्प्यूटर विज्ञान (Computer Science) के क्षेत्र में हो रही अनेक खोजो ने मानव की नींदे उडा दी है. इन तीनों ने मिलकर मशीन के पुर्जो की तरह मानव शरीर के लगभग सभी अंगों की संरचना, उसके कार्य और उसके पारस्पारिक संबंधों का अध्ययन करके उसे निकालने तथा उसको स्थापित करने की कला में दक्षता प्राप्त की है. जिसकी वजह से आज मनुष्य की बीमारी, हादसा आदि से होनेवाली मृत्यु को टालकर आयु में बढोत्तरी होने लगी है. उसमें सफलता प्राप्त करने के बाद वैज्ञानिकों के सामने एक नया प्रश्न उपस्थित हुआ है कि आखिर मनुष्य की नैसर्गिक मृत्यु कैसे होती है? मानवी दिमाग विचार कैसे करता है? उसके कार्य कैसे चलते है? वह स्मृतियों को कैसे सुरक्षित रखता है?, निर्णय कैसे लेता है? जैसे अनेक मानवी दिमाग से जुडे प्रश्नों ने वैज्ञानिकों को बेचैन करना शुरू किया है. जिसको लेकर न्यूरोसायन्स के अंतर्गत मानवी दिमाग की रचना और उसके कार्य को लेकर खोज शुरू हो गई है. मानवी दिमाग में विचार, कार्य, निर्णय आदि को लेते समय निर्माण होनेवाली इलेक्ट्रोमॅग्नेटिक लहरी को च्मॅग्नेटिक रेझोनन्स इमेजिंगड (एमआयआर) मशीन की सहायता से पकडकर अध्ययन किया जा रहा है. बंदर और कुत्तों पर इसको लेकर प्रयोग शुरू हो गए है. आनेवाले कुछ ही सालों में हमें उसमें भी सफलता मिल जायेगी. इस प्रकार की महत्वपूर्ण खोज की उपयोगिता को बताते हुए डॉ. पट्टिसापू लिखते है- च्भविष्य में अपनी कार्यक्षमता बढाने के लिए, लुप्त होती संवेदना को प्राप्त करने के लिए, ... और किसी व्यक्ति के व्यक्तिमत्व को बदलने के लिए, ... दिमाग को गहराई से उत्तेजित करने के लिए... और दिमाग के केंद्र पर नियंत्रण रखने के लिए इसका उपयोग हो सकता है. इस प्रकार की प्रगति से हमें कष्टों से मुक्ति मिल सकती है.छ[९] डॉ. पट्टिसापू के यह विचार गलत तो नहीं है, लेकिन आज के मानव में आयी नैतिक मूल्य की कमी, विवेकहिनता, स्वार्थांधता और पाश्विकता की वजह से उसके गलत इस्तेमाल की शंका विज्ञान कथाकार को अधिक सताने लगी है.

इस प्रकार की खोज को देखते हुए कथाकार के साथ हमारे सामने प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आज लगभग शरीर के सभी पुर्जे और दिमाग का कुछ अंश बदलने का काम हो रहा है. कल इसकी सफलता से दिमाग भी बदला जा सकता है. जब सब कुछ बदला जायेगा, तब मूल व्यक्ति के व्यक्तित्व का क्या होगा? उसके अस्तित्व का क्या होगा? क्या हमें दुसरों की स्मृतियों (विगत जीवन या अतीत) में झांकने का अधिकार है? जो इन्सान अपने लहुलूहान अतीत को भूलकर नए सिरे से जीवन की शुरूआत करना चाहता है, वह कभी कर पायेगा? पुरुष की पाश्विकता और दरिंदगी का शिकार बनी महिलाओं की घर-प्रहरथी बनी रहेगी? किसी भी व्यक्ति की नीजी जानकारी सुरक्षित कैसे रह सकती है? क्या इससे अविश्वास और संशय का वातावरण निर्माण नहीं हो सकता? ऐसी खोजों से मानवता क्या कभी सुखी हो सकती है? इस प्रकार की विधि आतंकवादी के हाथ लगी तो क्या होगा? स्वातंत्र्य, समता, न्याय और बंधु-भाव कैसे बना रहेगा? हम मानते है कि, अनैतिक गतिविधियाँ पर रोक लगाने के काम में इस प्रकार की खोज महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, लेकिन मनुष्य की अती महत्वकांक्षा उसे गलत कार्य के लिए अधिक प्रेरित करती रहेगी. इसलिए हमें मस्तिष्क में झांकने की बजाय उसके घ्मनड में उतरने की कला में महारती हासिल करने की दिशा में प्रयास करणा चाहिए. स्मृति दंश नामक कथा के नायक (राकेश) का दुःख बताते हुए उसका मित्र कहता है - च्पहला दुख उसे इस बात को लेकर था कि उसने स्मृति सबंधी अनुसंधान क्यों किया? उसको दुसरा दुख इस बात को लेकर था कि सीमा की यह त्रासदी उस समय घटी थी जब वह अपनी पी.एच-डी. के सिलसिले में विदेश गया हुआ था. लेकिन उसका सबसे बडा दुख इस बात को लेकर था की सीमा के साथ जिस व्यक्ति ने दुष्कृत्य किया था, वह उसका एक निकट सबंधी था जिसे वह यह जिम्मेदारी सौंपकर गया था कि जब तक वह विदेश में है, सीमा का वह ख्याल रखेगा. काश, राकेश मनुष्य के मस्तिष्क में झांकने की बजाय उसके मन को समझने की कला में दक्ष होता.छ[१०] राकेश का पश्चताप कल हमारा भी हो सकता है. जीवन को बेहतर बनाने के लिए प्रकृति के साथ छेड-छाड करने की बजाय ताल-मेल बिठाने की दिशा में हमारा प्रयास होना चाहिए. खोज बूरी नहीं है, हमारे नैतिकता का पूल डगमगाने लगा है. जिसकी वजह से इस तरह की अशंका निर्माण होने लगी है.

अंत में हम कह सकते है कि विज्ञान-प्रौद्योगिकी की प्रत्येक खोज मानव कल्याण के लिए समर्पित है. लेकिन मानव में आयी चरित्रहीनता, मूल्यहीनता, संवेदनाहिनता, विवेकहीनता की वजह से उसके गलत परिणाम सामने आने लगे है. इस कारण वैज्ञानिक खोजों का उद्देश पूरा होने की बजाय संशय सादृश्य स्थिति मे भटकता नजर आने लगा है. इन सब समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए तथा विज्ञान के सही इस्तेमाल करने के लिए सामाजिक प्रणालियों को सुधारने की आवश्यकता है. ज्ञान, विज्ञान और तत्वज्ञान की समुचित शिक्षा के माध्यम से नैतिकता, मानवीय मूल्य और विज्ञान के धर्म का पाठ पढाते हुए चारित्र्य संपन्न, मूल्याधिष्ठित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त समाज का निर्माण करने की आवश्यकता है. बाद में विज्ञान कितनी भी प्रगति करें तो भी उसकी ओर उँगली उठाने की हिम्मत





Scanned by CamScanner

किले के अंदर रह नहीं सकती. ऐसी स्थिति में मनुष्य को तय करना होगा कि हमें विज्ञान कितना चाहिए? नहीं तो इन्सान और इन्सानियत को विनाश लीला में मनुष्य को विगत स्मृतियों का दंश बार-बार डसता रहेगा. स्मृति दंश नामक विज्ञानकथा इस प्रकार घोर अधिक जानने की प्रवृत्ति तथा घोर अधिक...और अधिक... प्राप्त करने के चक्कर में उलझे विज्ञान के अध्येता, वैज्ञानिक, उद्योगपति के आँखों में अंजन डालने का महत्वपूर्ण कार्य करती है.

संदर्भ-ग्रंथ:-


०१.विज्ञान प्रगति (पत्रिका) : अगस्त, २००३ : पृ.क्र. २५.

०२.विज्ञान प्रगति (पत्रिका) : अगस्त, २००३ : पृ.क्र. २७.

०३.देवेंद्र मेवाडी, मेरी विज्ञान डायरी, प्रथम संस्करण - २०१२.

०४.पुष्पा मित्र भार्गव / चंदना चक्रवर्ती, देवदूत, शैतान और विज्ञान, अनुवाद- अनुराग शर्मा, प्रथम प्रकाशन - २०१४.

०५.के. वि. गोपाल कृष्ण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का मानव जाती पर प्रभाव, प्रथम संस्करण - २०१५.

०६.दुर्गाप्रसाद नौटियाल, वैज्ञानिकों के वैज्ञानिक : डॉ. आत्माराम, किताबघर प्रकाशन.


□□□



156

Scanned by CamScanner

ISSN : 2319 – 8648 CURRENT GLOBAL REVIEWER
Impact Factor : 2.143 SPECIAL ISSUE Issue 1, Vol 1, 10th Feb. 2018

# वैश्विकरण : विभ्रम और यथार्थ

**डॉ. बी. आर. नळे**
*हिंदी विभाग, सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगाव.*

----------(12)----------

सामान्यत: स्थानिय या क्षेत्रीय वस्तु, उत्पादन, सेवा, सुविधा के साथ घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतर और विनिमय की सर्वसमावेशक प्रक्रिया का नाम 'वैश्विकरण' है, जिसे 'भूमंडलीकरण' भी कहा जाता है। आज विशिष्ट लोग (सत्ता, शासन, प्रशासन, उद्योगपति और विश्व-व्यापार संगठन की मिलीभगत) और देशों (विश्व पर अपना प्रभूत्व स्थापित करने की लालसा से प्रेरित देश, खास करके अमेरिका) के द्वारा इस प्रकार की प्रक्रिया के माध्यम से विश्व में आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक एकीकरण की प्रक्रिया को प्रगति, उन्नति, विकास और समृध्दि के नाम पर गति देने का कार्य बडी चालाकी से करने लगे है। जिसके परिणाम आज समाज में सकारात्मक कम नकारात्मक जादा दिखाई देने लगे है। जिसकी वजह से 'वैश्विकरण' को लेकर समाज में विभ्रम (संशय) का वातावरण निर्माण होने लगा है. प्रस्तुत प्रपत्र के माध्यम से ऐसे विभ्रम के वातावरण को निर्मित करनेवाले कारणों पर विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

हमें एक बात याद रखनी होगी कि, आज हम वैश्विकरण के दूसरे दौर से गुजर रहे है। पहले दौर की शुरूआत सोलहवीं सदी से आरंभ हुई थी। सोलहवी सदी के आरंभ से बीसवीं सदी के मध्य तक के दौर का नेतृत्व यूरोप खंड और खास करके इंग्लैंड ने किया था। जिसका लक्ष्य संपूर्ण विश्व के साथ नए संबंध स्थापित करते हुए उन सबको अपना उपनिवेशक बनाने का था। जिसकी पूर्ति के लिए उन्होंने एक व्यापक अभियान शुरू किया था। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक आते आते उस अभियान का नेतृत्व अमेरिका के हाथ में चला गया। जिसने वैश्विकरण के दूसरे दौर की शुरूआत की है। आज अमेरिका ने वैश्विकरण के नाम पर उपर्युक्त अभियान को आगे बढाने के साथ साथ पूँजीवाद का भूमंडलीकरण (विस्तार और प्रभूत्व) करने पर जोर देना शुरू किया है। जिसके माध्यम से वह अपना विस्तार और प्रभूत्व पूँजी, शुल्क, निवेश, व्यापार, यात्रा और संस्कृति के माध्यम से पूरे विश्व में फैलाकर अन्य देशों की आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया को निष्क्रिय, शक्तिहीन और विकलांग बनाने का कार्य मीडिया के माध्यम से करने लगा है। और हम नई सभ्यता, संस्कृति और आधुनिकता के नाम पर उसे अपनाने की कोशिष करने लगे है। वे मीडिया के माध्यम से एक तरफ नई सभ्यता और संस्कृति के नाम पर गुलामी का प्रचार और प्रसार का अभियान बडी चालाकी से चलाने लगे है तो दूसरी ओर से भोग-विलस की सामग्री को एक थाली में परोसकर विश्व-बाजर में हमें नंगा करने लगे है। इस कारण आरंभ में वैश्विकरण ने जो सामान्य लोगों को सपना दिखाया था, वह टूटकर बिखरने लगा है।

उपर से उसको अधिक गतिमान और शक्तिशाली बनाने के लिए उन्होंने 'उदारिकरण' और 'नीजीकरण' को जोड दिया है। उदारता मूलत: मानसिक वृत्ति है, जो मानव कल्याण के काम आती है। इस प्रकार की उदारता की जगह पूँजी का विस्तार करने तथा उद्योग-व्यापार को फैलाने की लालसा से प्रेरित उदारिकरण को जबरदस्ती से सामान्य लोगों पर थोंपा गया। नीजी स्वार्थ में आकर अंतरराष्ट्रीय उद्योग-व्यापार के नीयमों में ढील देते हुए जनसामान्य में अपनी प्रगति, उन्नति, विकास और समृध्दि के लिए उदारिकरण की आवश्यकता का नया मुँहावरा गाढना शुरू किया है। जिसके चलते फिर एकबार नयीं उम्मीदें, सपनें और महत्वकांक्षाएँ पल्लवित होने लगी थी। लेकिन आज तक इसके जितने भी नतिजे सामने आ गए है, वे सब अमीरी और गरीबी को अधिक पुष्ट करनेवाले ही है। इस प्रकार के उदारीकरण को अधिक मजबूत करने का काम 'नीजीकरण' करने लगा है। इसकी मान्यता ने तो देश की संपत्ति, प्रकृति और श्रम को खुलेआम लूटने का लाईसेन्स ही दे दिया है। दुख की बात यह है कि, यह सब कार्य विकास, उन्नति, प्रगति और समृध्दि के नाम पर किया जाने लगा है। जो कभी भी होनेवाला नहीं है। भौतिक विकास और भोग-विलासी मानसिकता कभी भी मानव जाति को सुखी बना नहीं सकती। लेकिन इसके माध्यम से जमकर लूट की जा सकती है। आज सभी ओर यही हो रहा है। जिसे देखते हुए मराठी के प्रसिध्द कवि 'अरूण काळे' ने अपनी कविता मल्टीलुटालुटीचा झिंग लपालपा में लिखा है- " श्वापदा ने मारली शिकार / तोंड खुपसून दिली डकार / टूक टुक पहाणाऱ्यांनो कोल्हे लांडगे गिधाडांनो / तुटून पडा लुटालुटा, दात विचका पुढे घुसा / हाव आहेत, ताव मारा, पोढं





Scanned by CamScanner

सुरु करतो आता / भावनांची चव येते, थोड नको खूप नको / तो नालायक येला म्हणा, नाचा अन् आनंद करा / खुल्क है खुदा का और मुल्क जनता का / हुकूम कंपनी का, नाचो झिंग लयालया / ...''-01 आज के सत्ता, शासन, प्रशासन, उद्योगपति और विश्व-व्यापारी संगठनों ने मिलकर सामान्य लोगों की चिंतन क्षमता, विवेक और श्रम शक्ति को मारकर निराशा, हताशा, भ्रम और संशय का वातावरण निर्माण करके लूटना शुरू किया है। इस प्रकार की लूटनेवाली प्रवृत्तियों के प्रति सपमान्य लोगों को विचार करने की आवश्यकता है।

आज इस प्रकार के वैश्विकरण, उदारीकरण और निजीकरण ने प्रदूषण, तापमाण वृध्दि, असंतुलन, स्थानिय उद्योगों की कमोदी, प्राकृतिक संसाधनों का विनाश, बेरोजगारी और मानवी स्वास्थ्य के गंभीर प्रश्नों को निर्माण करना शुरू किया है। तब जाकर उसके विरोध में वातावरण निर्माण होने लगा है। ऐसे विरोध को कम करने के लिए सत्ता, शासन, प्रशासन, उद्योगपति और विश्व-व्यापारी संगठनों के द्वारा समाज में नए मीथकों के द्वारा वैश्विकरण की अनिवार्यता पर बल देने का प्रयास बार-बार किया जा रहा है। उनके द्वारा कई प्रकार के तर्क दिए जा रहे हैं। उनमें से पहला तर्क है कि, आज हमारे सामने वैश्विकरण के लिए दूसरा कोई विकल्प नहीं हैं, जिसे अपनाते हुए हम आगे बढ सकते है। दूसरा यह कि, आज वैश्विकरण को रोका जा नहीं सकता। वैसा करने का प्रयास हमारे पीछडेपण का कारण बन सकता है। तीसरा यह कि, वैश्विकरण के द्वारा ही मानव-समाज का उज्वल भविष्य निर्माण किया जा सकता है और चोथा यह कि, वैश्विकरण के बीना मानव समाज की प्रगति, उन्नति, विकास और समृध्दि की कल्पना तक हम कर नहीं सकते। और तो और अधिक तीव्र विरोध करने पर उन्हें प्रगति विरोधी होने का घोषणापत्र देकर जड से उखाडने लगे है। इस प्रकार के मीथकों के माध्यम से अमेरिका अपनी पूँजी, साम्राज्य की शक्ति और सभ्यता का विस्तार करने लगी है। और हमारे देश की सत्ता, शासन, प्रशासन, विश्व-व्यापार संगठन और उद्योगपति आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक नीतियों को भूमंडलीकरण के पक्ष में छाने की वकालत करने लगे है। आज भारत का अमेरिकीकरण जो होता जा रहा है, उसे कोई देख नहीं रहा। दुःख की बात तो यह है कि, भूमंडलीकरण के शिकार हुए लोग भी उसके समर्थन की बात करने लगे है। जिसकी वजह से शिकारी और अधिक क्रुर, विक्षिप्त और अविवेकी बनकर लूटने लगे है। ऐसा होने के बावजूद भी शिकार उनकी नीतियों को समझने की बजाय उनकी ही चिंता करता दिखाई देने लगा है। उसका जिक्र करते हुए "अशोक नायगावकर" ने अपनी कविता में लिखा है- "काळजी जमान्याला शेअरबाजाराची / वाहिन्याच्या टीआरपीची / स्टारांच्या मनाधनाच्या चढउतारांची / बोकाडी प्राथमिक परमेच्या / स्कोअर क्रिकेटची / .... कोरणार कोणत्या हातावर ग्लोबल मेंदीची नक्षी।''-02 सुख-सुविधा के नाम पर भोगविलासी मानसिकता को मजबूत करनेवाले मीडियाने हमारे विवेक को मारकर वेश्विकरण के माध्यम से जीवन की सार्थकता को तलाशने का भी नाटक शुरू किया है। यह वास्तविकता और भयावहता से कोसों दूर होने के कारण एक दिन जनता को भारी पडनेवाला है।

आज "वसुधैवकुटुम्बकम्" को "भूमंडलीकरण" के पक्ष में उतारकर लोगों को गुमराह बनाने का भी प्रयास किया जा रहा है। वास्तविक रूप से देखा जाए तो दोनों में जमीन आसमान का अंतर है। वसुधैवकुटुम्बकम् के बीच दुनिया को समानता, एकता और समन्वय के माध्यम से जोडते हुए उनमें सभी स्तरों पर संतुलन स्थापित करने का भाव विद्यमान है। यह संतुलन प्रेम, परोपकार, सहयोग जैसी मानवीय संवेदना के धरातल पर होने के कारण "बहूजन हिताय बहूजन सुखाय" के साथ जुडा है। आज का भूमंडलीकरण वास्तविक रूप से "भूमंडीकरण" का पर्यायी शब्द है। जिसका अर्थ विश्व-बाजार की शक्तियों के साथ जुडा है। इसका नारा है- 'दुनियाभर के पूँजीपतियों विश्व-बाजार, श्रम और संपदा को लूटने के लिए एक हो जाओ' का है। इस कारण इसके साथ मानवीय संवेदना का लोप और क्रूरता का पक्ष मजबूत हुआ है। आज इस प्रकार के अंतर को समझने का मौका ही लोगों को दिया नहीं जा रहा है। वर्तमान में इस अंतर को समझने की आवश्यकता ही नहीं तो इमानी अनिवार्यता बन गई है।

आज के वैश्विकरण को राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाय तो अमेरिका ने भूमंडलीकरण के नाम पर संसार का "अमेरिकीकरण" करना शुरू किया है। आज अमेरिका ने नई व्यवस्था और सभ्यता के नाम पर अपनी व्यवस्था और सभ्यता को विश्व-व्यवस्था और सभ्यता में परिवर्तित करना शुरू किया है। जिसके माध्यम से विश्व मे उन दोनों के प्रभूत्व को लेकर संघर्ष जोर पकडने लगा है। विश्व के लगभग सभी देश दूसरों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए तथा उसके प्रभाव से मुक्त रहने के लिए नए-नए

आयुध निर्माण करने लगे है। जिसके चलते संशय, संभ्रम और विरोधाभास का वातावरण निर्माण होने लगा है। जो समय समय पर अंतरराष्ट्रीय द्वेष भावना को बढाने का काम करने लगा है। आज इस प्रकार की भावना ने तृतीय विश्व-युध्द की संभावना को जन्म दिया है। अस्थिरता, असुरक्षितता और डर का माहौल निर्माण करना शुरू किया है। अमेरिका और चीन, अमेरिका और उत्तर कोरिया, अमेरिका और पाकिस्तान के बीच आज जो कुछ चल रहा है, उसका कारण और क्या हो सकता है? इस प्रकार के सत्ता संघर्ष और प्रभूत्व को जन्म देनेवाले वैश्विकरण के उपर्युक्त परिदृश्य को देखने के बाद मन में एक ही प्रतिक्रिया अंकित होती है, कि आज के वैश्विकरण ने मानव समाज को विनाश की ओर ले जाना शुरू किया है। इस कारण इस पर व्यापक स्तर पर चिंतन और मंथन करके नए विकल्पों को तलाशने की आवश्यकता है। भविष्य में प्रभूत्व की लढाई मानव विनाश का कारण बन सकती है।

'उत्तर-आधुनिकतावाद' एक सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में भूमंडलीकरण के साथ है। जो एक प्रकार से भूमंडलीकरण की ही समर्थक विचारधारा है। उत्तर-आधुनिकतावाद में आनेक विचारों, विचारधाराओं और वास्तविकताओं के उत्तर, अन्त और मौत की घोषना की जा रही है। इसमें उत्तर-आधुनिकता, उत्तर-धर्मनिरपेक्षता, उत्तर यथार्थवाद और उत्तर-मार्क्सवाद की घोषनाएँ हो रही हैं। इसके साथ ही विचारधारा के अंत, चेतना के अंत और विवेक के अंत की भी घोषनाएँ होने लगी है। इतना ही नहीं तो इसमें साहित्यिक लेखकों की मौत होने की घोषणा करते हुए मौत की निर्मिती का वातावरण भी सृजित किया करने लगे है। आज उसने विरोध की सारी संभावनाओं को नष्ट करना शुरू किया है। साम्राज्यवादी बुध्दि अपनी विशेष ऐतिहासिक स्थितियों और जरूरतों से उपजे प्रश्नों और विचारों के रूप में प्रस्तुत होने लगी है। जिसके माध्यम से विचारों के बाजार पर प्रभूत्व स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। 'डॉ. अनिल राजीमवाले' ने उत्तरआधुनिकतावाद का मूल्यांन करते हुए लिखा है- "पोस्टमॉडर्निज्म, पोस्टस्ट्रक्चरलिज्म तथा डीकंस्ट्रक्शन के अध्ययन से एक बात साफ उभरती है कि वें वर्तमान समाज, खासकर पूँजीवादी समाज के उतार-चढाव तथा विभिन्न अप्रत्याशित मोडों के प्रति तीखी प्रतिक्रिया का नतिजा है। समाजवाद के स्वरूप, उससे जनीत आशाओं तथा उसके उतार चढावों का भी इन पर गहरा प्रभाव पडा है। ये विचार पण्दतियाँ या चिंतन धाराएँ अशावाद के बजाए निराशवाद से अधिक प्रभावीत है। इसका कारण है कि समाज के विकास की विभिन्न मंजीलों ने जो संभावनाएँ पैदा की थीं, नये समाज या बेहतर समाज की जो आशाएँ जगी थीं, वे ध्वस्त हो गयीं और सपने अधूरे रह गए। फलतः वर्तमान सिध्दांत पर प्रश्न-चिन्ह लगा दिया गया और पूँजीवादी समाज-रचना संबंधी सिध्दांतों तथा तरिकों पर ही शक पैदा हो गया। पोस्टमॉडर्निज्म अविश्वास, निराशा और विखंडन तथा बिखराव से परिपूर्ण है, खास करके व्यक्तित्व के बिखराव से।"[03] जाहिर है कि, दुसरे दौर के आरंभ में अमेरिका से प्रेरित भूमंडलीकरण ने बहुत सारी महत्वकांक्षा, सपनें, इच्छा और अकांक्षाओं का बीजारोपन विश्व-मानव में करते हुए सबके जीवन में प्रवेश किया। जब सामान्य लोग अंदर और बाहर से सभी स्तरों पर बिखरने लगे तब जाकर विरोध में वातावरण निर्माण होने लगा है।

हमारे देश में भूमंडलीकरण, उदारीकरण और नीजीकरण के प्रभाव में आकर होनेवाले परिवर्तनों का 'डॉ. राममनोहर लोहिया' ने आकलन अच्छी तरह से किया था। वे एक चिंतक, अर्थशास्त्री, राजनेता, सांसद और बेचैन नागरिक थे। उनकी जितनी प्रखर भारत दृष्टि थी उतनी ही व्यापक विश्व दृष्टि थी। वे सभ्यता के प्रखर समीक्षक थे। स्वतंत्रता आंदोलन में वे जितने सक्रिय थे, उतने ही स्वतंत्रता के बाद भी रहे है। उन्होंने अजीवन संघर्ष किया है। आज उनके लोकसभा में हुए भाषण भारतीय संसदीय इतिहास की धरोहर बनी है। उन्होंने इतिहास चक्र में किसी भी सभ्यताओं के उत्थान-पतन के कारणों को तलाशते हुए कहा था - " जब कोई सभ्यता एक ही दिशा में अंधाधुंद बडती जाती है, तो वह डायनोसोरं की तरह अपने ही भार से नष्ट हो जाती है। उनके अनुसार वर्तमान सभ्यता (जिसे वे औद्योगिक क्रांति से निकली पश्चिमी सभ्यता कहतें हैं और पूँजीवाद तथा साम्यवाद को इसकी जुडवा संतानें मानते है) अधिकतम उत्पादन, अधिकतम उपभोग और अधिकतम विकसित प्रोद्योगिकी के चलते एक ही दिशा में अधिकतम क्षमता प्राप्त करने की ओर मुताबिक है और पूर्ण क्षमता के लक्ष्य (सभी दिशाओं में) को नजरांदाज करती रही है, इसीलिए वह अपनी मृत्यु की ओर बढती गई है।"[04] वर्तमान में विकसित नई सभ्यता डायनोसोरं का रूप धारण करने लगी है। जैसे जैसे उसका विस्तार होने लगा है, वैसे वैसे आंतरराष्ट्रीय द्वेश भावना में वृध्दि, प्राकृतिक संसाधनों का विनाश, प्रदूषण, असंतुलन, तापमाण वृध्दि, मानवी स्वास्थ्य के गंभीर प्रश्न और प्रभूत्व की लढाई के बीच विनाश के पग-चिन्ह दिखाई देने लगे है। इस कारण उस पर व्यापक विचार मंथन की आवश्यकता है।

कूल मिलाकर हम कह सकते है कि भूमंडलीकरण, उदारीकरण और नौजीकरण के दुष्परिणामों से हम परिचित तो होने लगे है, लेकिन उसके प्रभाव से बाहर निकलकर उसका विरोध करने की मानसिकता का लोप और व्यस्तता सामान्य लोगों में बढ़ती जा रही है। लोक-प्रतिनिधि और सरकार के प्रतिनिधियों की हमारे लिए कुछ करने की मानसिकता नहीं है और हमारी कुंभकर्ण की नींद से उठने की। ऐसी स्थिति में उनका मसिहा बनने का नाटक खूब रंग जमानेवाला है। देखना ना भूले...!

**संदर्भ-सूचि:**

०१. अक्षरदीप प्रकाशन, मराठी अभ्यास मंडळ, डॉ. बा. आं. म. विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, प्रथम प्रकाशन - जून २०१३, पृ. क्र. १६४.

०२. अक्षरदीप प्रकाशन, मराठी अभ्यास मंडळ, डॉ. बा. आं. म. विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, प्रथम प्रकाशन - जून - २०१३, पृ. क्र. १७६.

०३. उत्तरआधुनिकता विभ्रम और विमर्श, डॉ. रवि श्रीवास्तव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपूर, प्रथम प्रकाशन २००६, पृ.क्र.५५.

०४. लोकमत समाचार, रविवार, २२ मार्च, २००९, औरंगाबाद.

43

# विज्ञान साहित्य में पर्यावरणीय विमर्श

डॉ. बी. आर. नळे,
हिंदी विभाग,
सुंदरराव सोळंके महविद्यालय, माजलगाव, जिला. बीड, 431131.

**"हमारी सर्वोच्च सभ्यता में भी मनुष्य अभावों में मरते जाते हैं,**
**इसका कारण प्रकृति की कृपणता नहीं, अपितु मनुष्य का अन्याय है।"[01]**

आज हम देखते है कि, सतरहवीं सदी में न्यूटन ने जो खोज की, वही आधुनिक विज्ञान की अधारशीला बनकर हमारे सामने आ गई है। जो इक्कीसवीं सदी के दूसरे चरण तक आते आते अपनी पूरी क्षमताओं के साथ विकास, उन्नति और प्रगति के चरमोत्कर्ष तक पहुँच गई है। जिसने आज हमारे रहन-सहन, खान-पान, पेहराव, यातायात, स्वास्थ्य, मनोरंजन और सूचनाओं के आदान-प्रदान की सेवा, सुविधा और साधनों को एक थाली में परोसकर हमारी जीवनशैली को काफी हद तक प्रभावित करना शुरु किया है। जिसे देखते हुए हम कहते है कि, आज विज्ञान प्रौद्योगिकी ने मानवी जीवन को सरल, सुखी, समृध्द, आनंदायी और सुविधापूर्ण बना दिया है। जो गलत नहीं है, लेकिन विकास एवं प्रगति के नाम पर जो आधुनिक औद्योगिक अर्थरचना, जीवन-शैली, उत्पादन पध्दति की नीतियाँ सत्ता, शासन, प्रशासन और उद्योगपतियों की मिलीभगत से लागू हो रही है, उसने प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन को विनाश की ओर ले जाना शुरु किया है। आज मनुष्य के द्वारा प्रकृति पर किया गया हमला और कृतिमता के साथ किया गया विकास प्रकृति के लिए एक समस्या बनता जा रहा है। जिसकी पुष्टि विश्व स्वास्थ्य संगठनों, शिखर परिषदों की बैठकों और पर्यावरण नीति आयोगों की रिर्पोटों में वैज्ञानिकों ने दी हुई चेतावनियों को पढकर हो सकती है। ऐसा होने के बावजूद भी प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन की सुरक्षा और हितों को ध्यान में रखते हुए वैश्विक सुविस्तर पर कोई भी ठोस भूमिका नहीं ली जा रही है। सिर्फ कुछ करने का और होने का अभास और संभ्रम का माहौल निर्माण किया जा रहा है। जिसकी वजह से प्राकृतिक असंतुलण और दोहन, पर्यावरण प्रदूषण (पानी, जमीन, हवा, ध्वनि, रेडिओधर्मी, रासायनिक), उर्जा संकट, तापमाण वृध्दि जैसी अनेक गंभीर समस्याएँ हमारे पर्यावरण को लेकर निर्माण होने लगी है। जिसकी जानकारी और गंभीरता का ऐहसास हम जैसे तथाकथित बुध्दिजीवियों को तक नहीं है।

ऐसी हालात और माहौल में आम लोगों से उसकी उम्मीद करना अपने आपको धोखे में रखने जैसा है। इस कारण विज्ञान प्रौद्योगिकी की मदद से विकास के नाम पर विनाश की ओर बढते कदम को समय रहते नहीं रोका गया तो भविष्य में उसकी बहुत बडी कीमत मानव जाति को चूकानी पडेगी। इस प्रकार के होनेवाले विनाश से प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन को बचाने के संकल्प को लेकर आज का विज्ञान साहित्य लिखा जा रहा है। जिसका लक्ष्य विकास का आँखे बंद करके विरोध करना न होकर आँखें बंद करके किए जानेवाले विकास को रोकने का है। साथ ही प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन के बीच समन्वय, संतुलन और मित्रता के व्यवहार को बढावा देने का, समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करते हुए विज्ञानाधिष्ठित समाज के निर्माण का, पर्यावरण की स्वच्छता, निर्मलता और संतुलण से ही संसार को बचाने का, भोगविलासी जीवन-शैली की वैज्ञानिक तर्क के अधार पर आलोचना करते हुए पर्यावरण पूरक जीवन-शैली को विकसित करने का, प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन के विकास की नई राहें खेजने का दृढ निश्चय यत्र तत्र सर्वत्र दिखाई देता है। इस कारण प्रस्तुत लेख के माध्यम से विज्ञान साहित्य को केंद्र में रखते हुए पर्यावरणीय विमर्श को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

हमारी प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन की विसंगति की कुछ जडें 'पर्यावरण' की संकल्पना और उसकी समझ के अभाव में हमें देखने के लिए मिलती है। क्योंकि 'पर्यावरण' को न तो किसी ने आज तक सही अर्थों में समझाने की कोशिश की है, न तो लोगों को समझाने के लिए व्यापक योजना बनाई है। अगर किसी ने इस तरह के प्रयास किए भी हो, तो वे सब वर्तमान स्थिति और परिवेश को देखते हुए न के बराबर ही साबित होते है। जिसकी वजह से आज अधिकांश पढे लिखों के साथ अनपढ भी 'पर्यावरण' को परिभाषित करते समय मानव के चारों ओर व्याप्त चिजों को (जैविक/अजैविक) पर्यावरण मानते है। जो पूर्णतः गलत और बेबुनियादी है। जिसकी वजह से मानव पर्यावरण या प्राकृतिक

इकाई से अपने आपको पृथक समझाने लगा है। उसका यही भाव प्रकृति और पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने तथा उसका स्वामी बनने की लालसा निर्माण करने लगा है। प्रकृति और पर्यावरण के प्रति क्रुरता एवं संवेदनाहिनता के व्यवहार का कारण बनने लगा है। जब तक हम अपने अस्तित्व को पर्यावरण के अस्तित्व में विलिन करके समग्रता के साथ उसे परिभाषित करने तथा उसे समझाने की व्यापक योजना बनाकर लोगों के बीच नहीं जाते, तब तक पर्यावरण (प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन) की विनाशलिला इसी तरह चलती रहेगी। इस कारण पर्यावरण की संकल्पना को मानव अस्तित्व के साथ जोडने की आवश्यकता है। क्योंकि मानव पर्यावरण से अलग न होकर उसका एक हिस्सा है या उसके अनेक घटकों में से एक घटक है।

हमारे जीवन की प्रत्येक घटना पर्यावरण के अन्दर संपादित होती है तथा हम मनुष्य अपनी समस्त क्रियाओं से इस पर्यावरण को काफी हद तक प्रभावित करते है। ऐसा होने के बावजूद वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के प्रति बदलती जा रही दृष्टि या दृष्टिकोण का परिणाम पर्यावरण प्रदूषण और तापमान वृध्दि के रुप में सामने आ रहा है। जिसे देखते हुए पर्यावरणवादियों ने पर्यावरण के प्रति बदलते रवैये, उदसिनता, लापरवाही, समझादारी का अभाव, जनसंख्या वृध्दि को देखते हुए वर्तमान हालात को सुधारने की अपील की है। जिसकी वजह से प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन के अस्तित्व और सुरक्षा के गंभीर प्रश्न निर्माण हो रहे है। उन प्रश्नों की चर्चा डॉ. जयंत नारलीकर ने **'और मुंबई जल उठा' 'एका महानगराचा मृत्यु'** और 'हिम युग की वापसी' में की है। कथाकार ने **'हिम युग की वापसी'** में पर्यावरण प्रदूषण के लिए वैज्ञानिक और राजनीति के बीच स्वार्थों की टकराहट को जिम्मेदार ठहराया है। उनका मानना है कि, वैज्ञानिक लगातार पर्यावरण में बढते असंतुलन को देखते हुए आनेवाले दस बीस साल में पृथ्वी पर हिम युग की वापसी होने की भविष्यवाणी करने लगे है। लेकिन उनकी भविष्यवाणी को कोई गंभीरता से ले नहीं रहा। बल्कि उनकी खोजों को अधकचरा, परम्परागत सिध्दांत विरोधी मानकर दबाने का कार्य विज्ञान के ठेकेदार करने लगे है। उसका जिक्र करते हुए कथा नायक (वसंत) के माध्यम से कथाकार लिखते है " आम लोग सोचते है कि, हम वैज्ञानिक प्रकाण्ड विद्वान होते हैं, जो ईर्ष्या और लालच से परे केवल ज्ञान की खोज में लगे रहते हैं। पर यह सब बकवाज है। हम वैज्ञानिक भी आखिर मनुष्य ही हैं। मानवीय स्वभाव की सभी कमजोरियाँ हमारे भीतर भी होती हैं। अगर वैज्ञानिक व्यवस्था को नई खोजें हजम नहीं होती तो उसके पुरोधा लोग इन खोजों को दबाने के लिए सबकुछ करेंगे। मुझे भी अपनी भविष्यवाणियों का स्वर मंदा करना पडा।" [02] कोपरनिकस और गैलीलियो के दिनों में जो धर्म के ठेकेदार काम करते थे आज वही काम विज्ञान के ठेकेदार करने लगे है। आज इस प्रकार के मुठ्ठी भर लोगों का स्वार्थ प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन के चिंता और चिंतन का विषय बन गया है।

आज प्रगति, उन्नति और विकास के नाम पर पहाड और उसके आस पास के जंगलों को काटकर औद्योगिकीकरण के साथ साथ नगर और महानगरों का विस्तार किया जा रहा है। जिसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव, आपसी स्वार्थ और राजनीतिक दॉव पेंच के अलावा दूसरा कुछ भी दिखाई नहीं देता। जिसे **'बाईसवीं सदी'** नामक विज्ञान कथा के माध्यम से राहुल सांकृत्यायण ने वैज्ञानिक तर्क, प्रमाण और छोटे मोठे निरीक्षणों के माध्यम से रेखांकित किया है। तो **'लो चला पेड आकाश में'** नामक विज्ञान कथा के माध्यम से प्रकाश मनु ने मानवी जीवन के साथ पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में पेडों का महत्व एवं उसकी उपयुक्तता को रेखांकित करते हुए पेड को बहादूर सैनिक की उपाधि देते है। वे लिखते है " इसलिए न कि आज पेड काटे जा रहें है। पेड एक ऐसा बहादूर सैनिक है, जो दिन भर प्रदूषण से लडता है। कार्बनडाई ऑक्साईड सोकता है, ऑक्सिजन छोडता है।"[03] तो **'शब्द भेदी तीर'** को प्रकाश मनु ने परमाणु क्षपणास्त्रों की निर्मिती और उसके प्रयोग से निर्माण होनेवाली प्राकृतिक, पर्यावरणीय और मानवी जीवन से जुडी समस्याओं की भीषणता से मानव जाति को परिचित किया है। साथ ही वातावरण में फैलनेवाले इलेक्ट्रॉनिक रेडियशन के परिणामों से मानव जाति को अगाह किया है।

आज दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता जैसे औद्योगिक नगर और महानगरों में यातायात के साधन और औद्योगिक चिमनियों से निकलनेवाले धुवॉ और धूल से निर्मित दम घोंटू हवा, तपती धूल और कोलाहल के बीच एक तरफ वहॉ के लोग और छोटे मोटे जीव जुतुओं को सांस, ऑख, और स्वास्थ्य की बीमारियॉ हो जाने के कारण उसमें उनकी मृत्यु होने लगी है। दिल्ली की बात करे तो हर दिन कम से कम 1400 मीट्रिन टन एस. पी. एम. वातावरण में फैलने लगा है। जो हमें विकास के नही तो विनाश के करीब ले जाने का काम करने लगा है। लगातार बढते जा रहें सीमेंट कांकरीट के जंगल और टूबवेल के बोलबाले ने भूजल के स्त्रोत को सोख लिया है।

पेड पौधों की कटवाई और पानी के अभाव में सूखते जा रहे जंगल अपने गतवैभव का अलाप करते नजर आ रहें है। ऐसे में कार्बनडाय ऑक्साईड और सल्फरडाय ऑक्साईड का बढना स्वभाविक है। जो वैश्विक तापमान वृध्दि का कारण बन गया है। ऐसे में होनेवाली आम्ली वर्षा प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन को प्रदूषित करने लगा है। जिसका जिक विज्ञान कथाकार देवेंद्र मेवाडी ने अपनी विज्ञान कथा साहित्य में किया है। आज की दिशाहिन प्रगति और विकास को देखते हुए कथाकार के सामने प्रश्नचिन्ह उपस्थित होता है कि, आनेवाली नई पीढी को हम सौगात के रुप में क्या दे रहे है? जिससे नयीं पीढी का कल्याण होनेवाला है। **'दिल्ली मेरी दिल्ली'** नामक कथा में मुकूल हमें यही सवाल पुछता है " दादा जी, सचमुच क्या जवाब देंगें हम? दिल्ली के इतिहास की सचित्र पुस्तकों के पन्ने पलटते हुए हम भी तो मन ही मन यही सवाल पुछते हैं कि, आप लोगों ने क्या दिया हमें? वह अपार्टमेंट जिसमें कभी धूप नहीं आती। वे सडके जिनमें लाखों स्कूटर, मोटार कारें और बसें चलती हैं, कानों के पर्दे फाडती हैं और हवा में जहर उगला रही है। वह हवा जिसमें हम सांस तक नहीं ले पा रहे हैं। वह जमीन जिसमें एक अंकुर नहीं फूट सकता।"[01] तब उस पीढी को उत्तर देने की हमारे अंदर हिम्मत रहेगी क्या? इस पर आज के मानव को विचार करते हुए विज्ञान प्रौद्योगिकी के सहारे विकास की दिशाओं को सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर कथाकार ने बल दिया है। तो दूसरी तरफ लगातार बढती जा रही जनसंख्या, संवेदनाहिता और क्रुरता की वजह से प्राकृतिक संसाधन और पर्यावरण पर होनेवाले हमलों को लेकर **'चूहें'** नामक विज्ञान कथा लिखी है। मानव का प्रकृति पर लगातार बढता हस्तक्षेप भविष्य में हमें क्या दे सकता है? इसकी ओर संकेत किया है।

आधुनिक युग में हमारी तेज प्रतिभा, जरुरत से अधिक आत्मविश्वास और निरंतर विकसित तकनीकी अस्त्र निर्मिती के कारखनों में तब्दिल होने लगी है। जिसका जिक **'रंग मावळतीचे'** नामक विज्ञान कथा के माध्यम से प्रा. सुनिल विभूते ने किया है। ग्रीनहाउस इफेक्ट अर्थात तापमान वृध्दि के मूल में वातावरण में लगातार बडते जा रहे कार्बनडाई ऑक्साईड को जिम्मेदार ठहराया है। वर्तमान का विकास प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन के विनाश के आयुध किस तरह जुटाने लगा है, जो भविष्य में हमारे विनाश का कारण बननेवाला है। उसकी चर्चा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर की है. जिसमें तापमान वृध्दि, वातावरण में होनेवाले बदलाव, ऋतु चक्र में हो रहे बदल, अतिवृष्टि, बाढ, आंधी तुफान, अकाल, वनभूमि और जीव जंतुओं के कमी के मूल कारणों पर बल दिया है। ग्रीनहाउस इफेक्ट की वजह से निर्माण होनेवाली सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, खेती, उद्योग व्यापार, स्वास्थ्य की समस्याओं पर भी चर्चा की है। **'मिशन अर्थ 1'** नामक विज्ञान कथा के माध्यम से प्रा. सुनिल विभूते ने आज का मानव पृथ्वी पर का अधिकार किस तरह खोता जा रहा है, उसका चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखा है "अपने प्रयोगशाला में पृथ्वी को निर्माण नहीं किया। विश्व में अनेक ग्रह, तारे निर्माण हुए है। उनमें से एक पृथ्वी है। कुछ समय के लिए वह आपको मिली है, इतनाही। हमारी दृष्टि से यह पृथ्वी सब की है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि, वस्तु या व्यक्ति अपनी कहने पर हम उनकी कितनी देखभाल करते है, वैसी देखभाल आपने पृथ्वी की ली क्या? विज्ञान तकनीकी के बल पर आपने केवल खुद की प्रगति की है किन्तु पर्यावरण और पृथ्वी के बारे में कभी सोचा नहीं। प्रदूषण की वजह से अनेक पशु पक्षी, प्राणी, वनस्पती नष्ट होती गई। आपका भी अस्तित्व नष्ट होने के कगार पर आ चूका है।"[05] आखिर में ईश्वर है ही क्या? जिसके हाथ में हमारे जीवन मृत्यु की डोर है और मुसिबतों में हमारी रक्षा करता है, वही तो ईश्वर है। हमारा पर्यावरण यही काम करता है। इस लिए जिन्हें इतना साधारण विज्ञान नहीं समझाता, उन्होंने ईश्वर के रुप में पृथ्वी के साथ व्यवहार करने में क्या हर्ज है? हमारे पूर्वजों ने यही किया है।

आज नीचता, क्रुरता और स्वार्थ की सभी सीमाओं को पार करते हुए अपने आपको पुष्ठ करने का षडयंत्र कुछ लोगों के द्वारा खेला जा रहा है। खुद की महत्वकांक्षाओं की पूर्ति के लिए आम जनों के साथ बहुत बडा विश्वासघात किया जा रही है। जिस दिन मानव अपनी पूरी क्षमताओं के साथ विज्ञान प्रौद्योगिकी के विकास का प्रयोग प्रकृति, पर्यावरण और मानवी जीवन के हित में करेगा, उस दिन से वास्तविक विकास की गंगा निकल पडेगी। **'मिशन अर्थ 2'** में लेखक मानवी प्रतिभा, आत्मविश्वास और सामर्थ्य पर टिप्पणी करते हुए लिखते है "हम ही अपने जीवन के शिल्पी है। आज के मानव ने विज्ञान तकनीकी का इस्तेमाल मानव के कल्याण और मानवतावादी धर्म नामक दो तत्वों को आत्मसात करने पर मानव का उज्वल भविष्य निर्माण हो सकता है । यह प्रयास मानव को भविष्य में सुख, शांति, समृध्दि, स्थैर्य और सुरक्षितता की ओर ले जानेवाला है।"[06] इस तरह **'कर्तव्य'** और **'शांतता, यंत्रमानवाच राज्य आहे'** में निरंजन घाटे ने

बढते उद्योगधंदे और कलकारखानों से लगातार होनेवाले किरणोत्सर्जन की वजह से तापमान वृध्दि और मानवी स्वास्थ्य की समस्याओं के वैज्ञानिक कारणों पर बल दिया है। तो डॉ. मेघश्री दळवी ने भविष्य में निर्माण होनेवाले उर्जा संकट के परिणाम और प्राकृतिक असंतुलण की चर्चा **'सूर्य'** नामक विज्ञान कथा में की है। जिसका अंकन करते हुए उर्जा की बचत और प्राकृतिक संसाधनों के इस्तेमाल पर नियंत्रण रखते हुए उर्जा के नए विकल्प ढूँढने की अपील वैज्ञानिकों को की है।

ऐसी स्थिति में पर्यावरण से अपने आपको अलिप्त रखके आज का मानव कितने दिन खैर मना सकता? इसका ऐहसास हिंदी के सुभाष चंद्र लखेडा, देवेंद मेवाडी, सुबोध महंती, मनिष मोहन गोरे, गुणाकार मुलये, अरविंद मिश्र, अरविंद दुबे, जीशन हैदर जैदी, राहुल सांकृत्यायण, राजीव रंजन उपाध्याय, हरिश गोयल तथा मराठी के डॉ. जयंत विष्णू नारलीकर, बाल फोंडके, निरंजन घाटे, द. पा. खांबेटे, चंद्रकांत सहस्त्रबुध्दे, मोहन आपटे, लक्ष्मण लोंढे, डॉ. मेघश्री दळवी, प्रा. सुनिल विभूते आदि विज्ञानकथाकारों ने अपनी विज्ञानकथाओं के माध्यम से संपूर्ण मानव जाति को कराने का सफल प्रयास किया है। इस कारण विज्ञानकथाओं की पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में आलोचना करते हुए उसे समाज के सामने लाने की आवश्यकता ही नही तो आज के समय की अनिवार्यता बन गई है।

## संदर्भ सूचिः–


१. पर्यावरणीय प्रदूषण, डॉ. विष्णूदत्त शर्मा, पृ. 114.
२. रोमांचक विज्ञानकथाएँ, डॉ. जयंत विष्णू नारलीकर, पृ. 16.
३. विज्ञान फंतासी कथाएँ, राहुल सांकृत्यायण, पृ. 38.
४. कोख, देवेंद मेवाडी, पृत्र 41.
५. विस्मयकारी विज्ञानकथा, प्रा. सुनिल विभूते, पृ. 185.
६. विस्मयकारी विज्ञानकथा, प्रा. सुनिल विभूते, पृ. 270.


❑❑❑

# डॉ. जयंत विष्णु नारलीकर की विज्ञानकथा 'धूमकेतु'

**डॉ. बी. आर. नळे**

हिंदी विभाग,
सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगांव.

डॉ. जयंत विष्णु नारलीकर को खगोलविद्या और खगोलभौतिकी में विशेष रूचि होने के कारण उनकी अधिकांश विज्ञान कथाएँ उसी विषय को लेकर पाठकों के सामने आती है. उन में से एक कथा है- 'धूमकेतु'. जो उनके चर्चित 'रोचक विज्ञान कथाएँ' नामक विज्ञानकथा संग्रह में संकलित है. जिसके माध्यम से लेखक ने आज के वैज्ञानिक युग में रहनेवाले पेशेवर खगोलविदों की खोजों के प्रति उदासिनता, विलासीता एवं अतिवादिता की वजह से भविष्य में उबरनेवाले गंभीर संकटों को रेखांकित किया है, तो दूसरी तरफ सूविधाहीनता और आभावग्रस्तताओं के बावजूद शौकिया खगोलविदों की खोज के प्रति निष्ठा, लगन एवं समर्पण भाव को रेखंकित किया है. इन दोनों के अलावा भारतीय समाज में तर्कसंगत विचार तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आभाव ओर अंधविश्वास के बढते बाजार के बीच की खाई पर गंभीर चिंतन भी प्रस्तुत किया है.

हमारा 'सौरमंडल' सूर्य और उसकी परिक्रमा करनेवाले अनेक छोटे-मोटे ग्रह-उपग्रह और धुमकेतुओं से बना है. इस सौरमंडल के केंद्र में 'सूर्य' है तथा सबसे बाहरी सीमा पर 'वरून' नामक ग्रह है. वरून के परे 'यम' (प्लुटो) जैसे बौने ग्रहों के अतिरिक्त 'धुतकेतु' भी आते है. इनमें से अपनी जगह पर कोई भी स्थिर नहीं है. सब ग्रह, उपग्रह और धुमकेतु सूर्य के चक्कर लगाते है ओर सूर्य भी अपनी जगह बदलता है. लेकिन धुमकेतु को छोडकर अन्य सभी ग्रह, उपग्रह और तारों के चक्कर लगाने तथा स्थान बदलने की गति ओर परिक्रमा अलग-अलग होने के बावजूद निश्चित दिशा में होती है. इस कारण सौरमंडल का चित्र निरंतर बदलता रहता है. जिसका अध्ययन खगोलविद् निरंतर विशालकाय टेलीस्कोप के माध्यम से करते रहते है.

सौरमंडल के अंतीम छोर पर बहुत ही छोटे-छोटे अरबों पिण्ड विद्यमान होंगे, ऐसा वैज्ञानिकों का मानना है, जिसे 'धुतकेतु' या 'पुच्छल' तारा कहा जाता है. उसकी निर्मिती सौरमण्डलीय निकाय से होती है. जिनमें पत्थर, धूल, बर्फ और जमी हुई गैस (कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन, अमोनिया तथा अन्य पदार्थ जैसे सिलिकेट और कार्बनिक मिश्रण) होती है. इससे बने धुमकेतुओं में से कुछ 'छोटी परिक्रमावाले' धुमकेतु अण्डाकार पथ में लगभग छः से दो सौ वर्ष में अपनी एक परिक्रमा पूर्ण करते है. तो 'दीर्घ परिक्रमावाले' धुमकेतु वलायाकार रूप में अपनी एक परिक्रमा पूर्ण करने में हजारों वर्ष लगाते है. लेकिन इसकी (दीर्घ परिक्रमावाले) एक विशेषता है, कि वे एक परिक्रमा पूर्ण करने के बाद दिखाई नहीं देते. अर्थात एक ही बार दिखाई देते है. जब इस प्रकार के धूमकेतु सूर्य के निकट आते है, तब सौर विकिरण के प्रभाव से उनमें स्थित नाभिकी गैसों का बास्पीकरण हो जाता है. इससे कोमा (अग्र) का आकार बढकर पीछे का भाग करोडों मील तक लंबा हो जाता है. एक प्रकार से कहें तो उससे निकली गैस और धूल अरबों मील लम्बी पूछ का आकार ग्रहण कर लेती है. सौर हवा के कारण यह पूछ सूर्य से उल्टी दिशा में होती है. सूर्य की रोशनी पूछ से परिवर्तित होने के कारण वह चमकती है. जैसे जैसे धुमकेतु सूर्य के नजदिक आता है, पूँछ का आकार बढता ही जाता है. इस पूँछ के कारण उसे 'पुच्छल तारा' भी कहा जाता है. छोटी परिक्रमावाले धुमकेतु की पूँछ का अकार हर परिक्रमा के समय कम होता जाता है और अंत में एक स्थिति ऐसी आती है कि उसकी पूँछ गायब होकर केवल चट्टान मात्र रह जाता है.

ऐसे धुमकेतुओं की परिक्रमा निश्चित न होने के कारण वे अपनी परिक्रमा के दौरान अन्य ग्रह-उपग्रह को टकराने की अधिक संभावनाएँ होती है. ऐसा धुमकेतु पृथ्वी को टकराने पर काफी विनाश हो सकता है. उससे होनेवाली संभावित हानी को

रोकने के लिए सौरमंडल (सूर्य की चक्कर लगानेवाले धूमकेतुओं) का बारीकी से निरीक्षण करने की आवश्यकता होती है. छियासट दसलक्ष साल पहले ऐसा ही एक बड़ा धूमकेतु (१० की. मी. अकार का) मेक्सिको के पास गिरा था. उसकी वजह से वहाँ की जीव-सृष्टि नष्ट हो गई थी. आज की बात करे तो पृथ्वी पर हर दिन लग-भग बीस हजार किलो वजन के छोटे-छोटे धूमकेतुओं का आक्रमाण होता है. लेकिन पृथ्वी के वातावरण में आते ही वे जलकर नष्ट होते है. जिसका पता और अनुमान हमें नहीं है. उसकी वास्तविकता को डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने बताते हुए लिखा है- ‘‘पृथ्वी पर हर दिन सामान्यतः बीस हजार किलो वजन के मीटिऑर्स का आक्रमण होता है. इस प्रकार के आक्रमण से बचाव करने केलिए हमें वरदान के रूप में वातावरण का सुरक्षा कवच मिला है. जब किसी भी समय बाहर से कोई भी पदार्थ अथवा सूक्ष्म कण पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश करता है, तब उसका हवा पर दबाव बढ जाने के कारण हवा गर्म होती है और तापमाण १६५० अंश सेल्सियस तक पहुँच जाता है. हवा के साथ होनेवाले घर्षण से तापमाण और अधिक बढने के कारण वह पदार्थ जलकर राख हो जाता है. जिसे हम ‘उल्कापात’ कहते है. ... इस प्रकार की राख पृथ्वी की ओर हर दिन लग-भग १०० टन तक आती है.’’[०१] भविष्य में हम केवल वातावरण पर निर्भर रह नहीं सकते. क्योंकि इससे बड़े-बड़े अकारवाले धूमकेतु वातावरण में नष्ट हो नहीं सकते. ऐसे धूमकेतु पृथ्वी को टकराने पर काफी विनाश हो सकता है. इस विनाश से बचने केलिए हमें भविष्य में ऐसे धूमकेतु को दूसरी जगह भेजने तथा हवा में नष्ट करने की योजनाओं पर अनुसंधान करने की आवश्यकता है. लेकिन इस प्रकार के अनुसंधान को न वैज्ञानिक गंभीरता से ले रहे है, न देश की सरकारें उसपर अनुसंधान करने केलिए वैज्ञानिकों को प्रेरित कर रही है, न उस प्रकार के अनुसंधान पर खर्च करने लगी है. आज केवल नाम के लिए सब कुछ करने का प्रयास किया जा रहा है.

प्रख्यात खगोलविद् डॉ. जयंत विष्णु नारलीकर ने इस धरातल पर ‘धुमकेतु’ नामक विज्ञानकथा लिखी है. जिसके के माध्यम से पृथ्वी को ‘दत्ता दा’ नामक धुमकेतु के टकराने की कल्पना की है. उसके टकराने से पृथ्वी पर होनेवाले विनाश का जीक्र करते हुए कथाकार कथा नायक ‘जॉन मेकफर्सन’ के माध्यम से कहते है- ‘‘क्या तुम महसूस कर सकते हो कि धरती पर जीव-जंतुओं की सारी प्रजातियों को बचाने के लिए हमारे पास केवल दस माह का वक्त हैं? क्योंकि इस सीधी टक्कर में ऐसा नहीं होगा कि धरती का केवल वही भाग तबाह हो, जिससे धुमकेतु टकरा जायेगा. वातावरण के आभाव में वे जीव-जंतु भी नष्ट हो जायेंगे, जो टक्कर से बच जायेंगे. क्या तुम नहीं सोचते कि इस सब को रोकने के लिए हमें कुछ करना चाहिए?’’[०२] क्योंकि ऐसे धुमकेतु के टकराते ही धरती पर का अधिकांश भाग तबाह हो जायेगा, तापमान अधिक बढने के कारण उसके शिकार छोटे-मोटे जीव-जंतु हो जायेंगे, उसमें से निकलनेवाली धूल और जहरीली वायू वातावरण में फैलने के कारण बचे हुए शेष जीव-जंतु भी उसके चपेट में आ जायेंगे. इस लिए वैज्ञानिकों ने ऐसे विनाशकारी धुमकेतुओं से पृथ्वी वासियों की रक्षा करने हेतु उपाय खोजने की आवश्यकता है. इसके लिए सौरमण्डल का निरंतर अध्ययन करने की आवश्यकता है. क्योंकि धूमकेतुओं के टकराने की संभावनाओं को देखते हुए कुछ उपाय किए जा सकें.

लेकिन बडे दुर्भाग्य से हमें कहना पड रहा है कि आज तक जितने भी धुमकेतुओं की खोज हुई है, उनमें से अधिकांश ‘लकीर के फकीरवाले वैज्ञानिकों’ ने नहीं तो ‘शौकिया वैज्ञानिकों’ ने की है. आज पेशावर खगोलविदों के पास सौरमण्डल का बारीकी से अध्ययन करने केलिए विशालकाय टेलीस्कोप और उसमें दिखनेवाली एक एक चीज को दर्ज करनेवाले इलेक्ट्रॉनिक गॅजेटरी के साथ अन्य सभी प्रकार के उपकरन उपलब्ध है. किन्तु उनमें खोज के प्रति दूरदर्शिता का आभाव, खोज के प्रति उदासिनता, खोज एवं अनुसंधान के पूर्व निर्धारित कार्यक्रमों तक की सीमित दृष्टि और वैज्ञानिक समझ का आभाव होने के कारण धुमकेतुओं का अध्ययन एवं खोज गंभीरता से नहीं हो रही है. वे खोज के दौरान धुमकेतु दिखा तो भी कोई मामूली चीज समझकर नजरंदाज करने लगे है. लेकिन वही मामूली चीज हम सभी के विनाश का कारण बन सकती है, यह उन्हें कौन समझाए? इसके बिल्कुल उल्टे शौकिया खगोलविद् त्याग, समर्पण, निष्ठा और लगन से तमाम कठीनाईयों पर विजय प्राप्त करते हुए अपनी खोज और अनुसंधान करने लगे है. आज तक जिन धुमकेतुओं को पेशेवारों ने नजरअंदाज किया था, उसे

शौकिया खगोलविदों ने अपनी तमाम कठीनाईयों (पैसा, साधन और समय की कमी) के बावजूद खोज निकाला है. उन सभी शौकिया खगोलविदों का प्रतिनिधित्व 'श्री. मनोज दत्ता' (कथा नायक) करता है. जो तमाम कठीनाईयों के बावजूद धुमकेतु (दत्ता दा) की खोज करता है. श्री. मनोज दत्ता जैसे शौकिया खगोलविदों की वजह से हम धुमकेतु और उसके टकराने के परिणामों के बारे में जान पाए है. ऐसे शौकिया खगोलविदों के योगदान को कोन भूल सकता है.

आज हम देखते है कि विज्ञान, खेलकूद और कला के क्षेत्र में अच्छे प्रदर्शन या काम करनेवालों की कमी हमारे देश में नहीं है. लेकिन हमारे देश का दुर्भाग्य है कि ऐसे प्रदर्शन या काम करते समय हम उनका संघर्ष, परिस्थिति, परिवेश और उस कार्य के परिणामों का वैज्ञानिक ढंग से न अध्ययन करते है, न उसे समझने की कोशिश करते है. हम तो बस! उन्हें मिली सफलताओं से खुश होकर स्वागत और बधाईसमारोह का आयोजन पूरे देश में करके उस पर पानी की तरह पैसा बहाने में ही अपनी सार्थकता मानते है. कथाकार के अनुसार प्रशंशा, सम्मान और शुभकामनाओं की आवश्यकता तो नए काम के लिए प्रेरणाप्रद होती है ओर वह होनी भी चाहिए. किन्तु उसका अति कर देना नुकसानदेह भी हो सकता है. उनकी महानता को अपने अंदर समाते हुए, हमें उनके कार्य का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करना चाहिए. उससे निरंतर हमें कुछ ना कुछ सीखने की कोशिश करनी चाहिए. हो सकता है कि हमारे इस प्रकार के प्रयास से प्रेरणा लेकर कोई नया वैज्ञानिक, खिलाडी या कलाप्रेमी सामने आ जाए. इस प्रकार सरकार और समाज की मानसिकता और उत्सवप्रियता को देखते हुए नोबेल विजेती 'गर्टी कोरी' ने भी कहा था- "मूलभूत अनुसंधान को हमारा समाज अधिक महत्व नहीं देता. इस प्रकार के वैज्ञानिकों की तनखा और प्रतिष्ठा भी कम ही होती है. किन्तु एकाधे पुरस्कार तथा सम्माण से अनुसंधान के श्रेष्ठत्व को सिध्द करने पर उनकी तरफ देखने की दृष्टि लोगों की बदल जाती है. लोग उनकी तरफ आदर से देखने लगते है. किन्तु इस प्रकार का आदर उनकी तपश्चर्या के प्रति न होकर उनको मिले सम्माण के प्रति होता है. इस प्रकार की वास्तविकता है."[०३] कथा नायक 'श्री. मनोज दत्ता' की यही त्रासदी है. उनके परिप्रेक्ष को भूलकर धुमकेतु की खोज में मिली सफला को लेकर सरकार, सेवाभावी संस्थाएँ अन्य लोगों द्वारा जो स्वागत समारंभ और शुभेच्छाओं की अति की जाती है, उससे वे दुःखी हो जाते है. वे भारतीय लोगों की अपरिपक्वता को लेकर चिंतीत रहते है.

आज के वैज्ञानिक युग में विज्ञान ने ईश्वर के अस्तित्व पर कई प्रश्न चिन्ह उपस्थित किए है, फिर भी भारतीय समाज देववादिता और भाग्यवादिता से पूरी तरह से बाहर नहीं आ रहा. आज एक ओर वैज्ञानिक हर प्रश्न एवं समस्या का हल तर्कसंगत विचार, प्रयोग, परिक्षण और निरिक्षणों के माध्यम से ढूँढने का प्रयास करने लगे है. तो दूसरी ओर धर्म और अध्यात्म के तथाकथित ठेकेदार (बुवा-बाबा, ज्योतिषि, धर्मगुरू) उन सारी समस्याओं का संबंध दैवी प्रकोप, पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, दिव्य और दानवी आत्माओं से लगाकर भारतीय समाज में अंधविश्वास और अंधश्रध्दा का महापूर ला रहे है. वे बूरी आत्मा की साया, दैवी प्रकोप आदि से बचने के लिए खुले आम यज्ञ, पूजा-पाठ, होम-हवन का आयोजन पूरी ताम-झाम में करके देशवासियों को लूट रहे है. वे सामान्य जनों की तर्कशक्ति को मारकर ईश्वर के नाम पर अपना गुलाम बनाने लगे है. उनकी मधुर वाणी में उलझकर पढे-लिखे नौजवान (कुछ डाक्टर, वैज्ञानिक, इंजीनियर्स, वकिल और अन्य विषयों में डीग्री पानेवाले) तक उसमें खुशी-खुशी शामिल होने लगे है. वे पूर्वजों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को देखने की बजाय रीति-रिवाज को आँखे मूँदकर स्वीकारने लगे है. आज देश में इस प्रकार का चित्र देखकर हदय सुन्न हो जाता है. हम कौन से युग में जी रहे है? यह प्रश्न फिर आंखों के सामने खडा होने लगता है. प्रस्तुत कथा में जब शिवराज 'श्री. मनोज दत्ता' को धुमकेतु की बूरी साया से बचने के लिए पूर्वजों का वास्ता देकर यज्ञ को आयोजित करने की सलाह देता है. तब दत्ता दा पूर्वजों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण समझाते हुए कहते है- "ऐसे रीति-रिवाज का आँखे मूँदकर पालन करने से हम आपने पुरखों के साथ बडा अन्याय करते है. ... उपनिषदों के रचियाता प्रकृति के बारे में जानना चाहते थे, ब्रहमांड को जानना चाहते थे और अस्था के नाम पर कुछ भी स्वीकार नहीं करते थे. वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण न जाने कब और कहाँ लुप्त हो गया, इसकी कीमत आज भी हम चुका रहे हैं;"[०४] हमें

अपने पूर्वजों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की दिशा में कदम उठाने की आवश्यकता है. इसके साथ ही शिक्षा-व्यवस्था का ढाँचा भी हमें सुधारना होगा. जब तक शिक्षा के माध्यम से पुस्तकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित किया नहीं जाता, तब तक देश की तस्वीर बदल नहीं सकती.

संक्षेप में कहा जाए तो भविष्य में पृथ्वी को धूमकेतु टकराने की संभावना को कोई टाल नहीं सकता. ऐसे में पेशावर खगोल वैज्ञानिकों ने गंभीरता से सौरमण्डल का निरीक्षण और परीक्षण करते हुए भविष्य में जीव-सृष्टि की रक्षा करने के लिए उपायों को खोजने का प्रयास करना चाहिए. साथ ही आनेवाली समस्या की गंभीरता को देखते हुए देश की सरकार ने शोधिका वैज्ञानिकों को खोज एवं अनुसंधान के लिए प्रोत्साहन और सुविधाएँ देने की आवश्यकता है. खोज एवं अनुसंधान में मिली सफलता की तर्कसंगत चर्चाओं का आयोजन करना चाहिए. अंधश्रध्दा और अंधविश्वास को फैलानेवाले लोगों के खिलाफ सख्त कदम उठाने चाहिए. पेशावर वैज्ञानिकों ने निर्धारीत रूपरेखा में खोज एवं अनुसंधान करने की बजाय मुक्त रूप में अनुसंधान करना चाहिए. देश के पढ़े-लिखे नौजवानों ने प्रतिप्रश्न पूछकर हर प्रश्न का उत्तर ढूँढने की कोशिश करनी चाहिए. शिक्षा व्यवस्था की आधारशीला विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की होनी चाहिए. तभी देश तथा देशवासियों का भविष्य उज्वल और कल्याणकारी हो सकता है.

**संदर्भ-सूचिः-**


०१. डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम / सृजनपाल सिंह, विज्ञानाच्या उज्वलवाटा, अनुवाद- प्रणव सखदेव : पृ. क्र. ११७.

०२. डॉ. जयंत विष्णु नारलीकर, रोमांचक विज्ञान कथाएँ (विज्ञान कथा संग्रह), पृ. क्र. ९६.

०३. चित्रा नित्सुरे, नोबेल विज्ञानवती (नोबेल विजेत्या महिला वैज्ञानिकांच्या गाथा), पृ. क्र. ८०.

०४. डॉ. जयंत विष्णु नारलीकर, रोमांचक विज्ञान कथाएँ (विज्ञान कथा संग्रह), पृ. क्र. ५००.


❖ ❖ ❖ ❖

# हमें दोष न देना ....!
## (दहेज प्रथा और वर्तमान संदर्भ)

**डॉ. भाउसाहेब रा. नढे**
हिंदी विभाग,
सुंदरराव सोलंके महाविद्यालय, माजलगाव.

वर्तमान युग में विज्ञान-प्रौद्यौगिकी के क्षेत्र में होनेवाली प्रगति, उन्नति और विकास की गति और उससे प्रभावित मानव जीवन को देखने से एक बात स्पष्ट हो रही है कि, भारतीय समाज विकास की ओर तेजी से बढने लगा है. लेकिन अब तक यह स्पष्ट हो नहीं पा रहा कि, उसका विकास के नाम पर उठनेवाले प्रत्येक कदम की गति और दिशा ठीक है या नहीं? क्योंकि हमने २१ वीं सदी में विज्ञान-प्रौद्योगिकी को अपने विकास का पैमाना तो बना दिया, परंतु आज तक किसीने भी न तो उसके द्वारा होनेवाले विकास की परिभाषा (अवधारणा) को तर्कसंगत रूप में प्रस्तुत करने का कष्ट उठाया है, न तो उसके विकास की भूमिका और सामाजिक आवश्यकता को समाज के सामने रखा है. इस कारण आज विकास की अंधी और दिशाहिन दौड में शामिल हर व्यक्ति ज्ञान, विज्ञान, तत्वज्ञान और जीवन मूल्य के अभाव में विगत चुनौतियों से मुक्त होने की बजाय लाश की तरह ढोने में ही अपने जीवन की सार्थकता मानने लगा है. जिसकी वजह से आज हमारा समाज एक साथ दो धरातलों पर (नए और पूराने) अपना जीवन व्यतीत करता हुआ हमें दिखाई दे रहा है. दिल, दिमाग और विवेक से खाली आदमी एक तरफ विकास (भौतिक) की नई सीढियों पर कदम रखने लगे हैं, तो दूसरी ओर पूरानी प्रथाओं और सामाजिक विसंगतियों के कारण अंदर से टूटने लगा है. ऐसी स्थिति में हम व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के सर्वांगिन विकास की कल्पना कैसे कर सकते है? व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्रीय जीवन के साथ जुडी समस्याओं से हमें मुक्ति कैसे मिल सकती है? ऐसी अनेक समस्याएँ हैं, जिससे निजात पाए बिना हमारी प्रगति हो ही नहीं सकती. उनमें से एक है - 'दहेज प्रथा'. प्रस्तुत आलेख के माध्यम से वैज्ञानिक युग में लगातार फैलते जा रहे बाजारवादी मूल्य और विद्रुप प्रदर्शनवाद के बीच 'दहेज प्रथा की स्थिति और गति' पर चिंतन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है.

आरंभ से ही भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करने तथा व्यक्ति एवं समाज जीवन में सुधार लाने के उद्देश से विज्ञान-प्रौद्योगिकी को बढावा दिया जा रहा है. जिसकी वजह से व्यक्ति केंद्रित अर्थव्यवस्था और उनकी नयी सभ्यता (भोग-विलासी) का हमारे देश में समान्तर विकास होता आ रहा है. जिन्होंने 'व्यावसायिकता, विषमता और विद्रुप प्रदर्शन' पर लगातार जोर देते हुए लोगों के मन में अनगिनत सपनें, इच्छा और अकांक्षाओं को जन्म देकर उन्हें लगातार बाजार में तब्दिल करना शुरू किया है. जिसकी चपेट में सदियों से चलती आ रही भारतीय सभ्यता, संस्कृति और संस्कार आ गए है. ऐसे अनेक संस्कारों में से 'विवाह' एक धार्मिक संस्कार है. आज हम देखते है कि, गत काल में 'विवाह'नामक धार्मिक संस्कार दो परिवारों के मिलन का पवित्र अवसर और माध्यम बना था, लेकिन आज उद्योगपति, व्यावसायिक और उनके समकक्ष लोगों के द्वारा उसके मूल में घोर व्यावसायिकता और विद्रुप प्रदर्शनवाद को लाने का कार्य अधिक मात्रा में किया जा रहा है. उनके द्वारा विवाह को प्रतिष्टा और सम्माण का विषय बनाने की कोशिश की जा रही है. उनके शादी-ब्याह में होनेवाली ताम-झाम ने एक ओर गरीब लडके तथा उसके माता-पिता में महत्वकांक्षा और सपनों को जगाना शुरू किया है, तो दूसरी ओर गरीब बेटी और उनके माता-पिता की उपेक्षा और प्रताडना करना शुरू किया है. जिसकी वजह से धूम-धाम से अपनी संतानों की शादी करना हर एक का सपना बनता जा रहा है. ऐसी परिस्थिति में दहेज प्रथा के लिए केवल पुरूष प्रधान संस्कृति को दोष देते हुए उसके समूल उच्चाटन की कल्पना करना अपने आपको धोके में रखने जैसा है. इस कारण आज हमें पुरूष प्रधान संस्कृति को

दोष देने की बजाय हमारी भूख बडानेवाले व्यक्ति और माध्यमों की मानसिकता में बदलाव लाने की दिशा में कोशिश करनी चाहिए. साथ में विवाह जैसे संस्कारों में समानता, एकता, सार्वभौमिकता और सादगी के भाव को लाने की दिशा में सभी ओर से प्रयास करने की आवश्यकता है.

आज हमारे देश में भूमंडलीकरण, नीजिकरण और उदारीकरण की हवा ने हर किसी को भोग-विलासी, ऐय्यासी और आरामदेह जिन्दगी जीने के लिए प्रेरित करना शुरू किया है. गलत नहीं है, लेकिन श्रम संस्कृति, सृजनशीलता, संस्कार और मूल्य शिक्षा के अभाव में इस तरह की जिन्दगी कैसे बिताई जा सकती है? आज इसपर न सामाजिक प्रणालियाँ चिंतन करती दिखाई देती है, न देश को चलानेवाले कर्णधार चिंतीत दिखाई देते है. उद्योगपति, व्यावसायिक और उनके समकक्ष लोगों को तो 'अपना काम बनता, भाड में जाए जनता' से लेना देना है. इन सभी की मिली भगत ने देश के अंतर्गत विषमता, विद्रुपता और विरोधाभासोंवाली परिस्थिति को फैलाकर देश के युवकों को विवेकहीन, दिशाहीन, कौशल्यहीन और निठ्ठल्ला बनाना शुरू किया है. ऐसे में भोग-विलासी, ऐय्यासी और आरामदेह जिन्दगी जीने की प्रबल कामना और घोर अर्थाभाव का पर्याय 'दहेज' बनकर सामने आ रहा है. "आधुनिक जीवन भैतिकवाद की ओर तीव्रता से उन्मुख होता जा रहा है. सभी चाहने लगे है कि बीना परिश्रम के सभी उपकरणों को सहज रूप से प्राप्त कर लिया जाए. यही भौतिकवाद की अतृप्त चाह दहेज के रूप में प्रतिफलित हो गई है. हमारी लोभी मनोवृत्ति हमें सर्वनाश की ओर ले जा रही है."[०१] पहले लडके पंद्रह-बीस साल मेहनत करके सुख-सुविधा के सामान इकठ्ठा करते थे, आज वे विवाह के समय ही बटोरते नजर आने लगे है. हमारी उपभेक्तावादी प्रवृत्ति भारतीय सभ्यता, संस्कृति, जीवन मूल्य के विरोध में वातावरण तैय्यार करने लगी है. जिसकी वजह से विवाह जैसे पवित्र रिश्ते को लेकर आज हमारा दृष्टिकोण दुषित बनता जा रहा है. इस कारण आज दहेज के लिए पुरूष प्रधान संस्कृति कम उपभेक्तावादी संस्कृति और सामाजिक प्रणालियों की कर्मशून्यता एवं निरांकुशता अधिक जिम्मेदार है. जिसे नजरअंदाज करके दहेज प्रथा से भारतीय समाज को कभी मुक्ति मिल नहीं सकती.

हमें एक बात का निरंतर खयाल रखना चाहिए कि, 'दहेज' जैसी कुप्रथा के समूल उच्चाटन के लिए सबसे पहले सन् १९६१ ई. में 'दहेज निषेध अधिनियम' बनाया. जिसमें स्पष्ट कहा गया है- "विवाह के समय, उससे पहलें अथवा उसके बाद प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से विवाह के निमित्त दी गई अथवा देने की सहमती की गई ऐसी किसी भी संपत्ति या मूल्यावान प्रतिभूति को दहेज माना जायेगा. जो विवाह में शामिल किसी भी एक पक्ष द्वारा दुसरे पक्ष को दी जाती है."[०२] इससे स्पष्ट होता है कि, शादी में इस तरह के होनेवाले लेन-देन को दंडनीय अपराध माना गया है. तब से लेकर आज तक हमारी सरकार ने अदालत के निर्देशानुसार कई सुधार किए गए है, लेकिन उसका नतिजा वही 'ढाक के तीन पात' के रूप में हमारे सामने आ रहा है. न उससे दहेज प्रथा और महिला उत्पीडन बंद हो पाया है, न हमारी मानसिकता (स्त्री-पुरूष) में कोई बदलाव आ गया है. सरकारी कानून और योजनाएँ कभी गलत हो नहीं सकती, गलत तो उसपर अमल करनेवाले तथा उसे कार्यान्वित करनेवाले की नियत और सोच होती है. आज उसी के परिणाम सर्वत्र दिखाई दे रहे है. दहेज प्रथा के संदर्भ में देखा जाए तो पैसों की लेन-देन के द्वारा घर और पुलिस थाने में महिला उत्पीडन और स्त्री हत्या के मामलों को सुलझानेवालों की हमारे देश में कमी नहीं है. आज दौलतमंदों पर इसका नशा छा जाने के कारण उनके घर में खुले आम महिला उत्पीडन और हत्या का शिलशिला चलने लगा है, जो घर से पुलिस थाने तथा अदालत पहुँचने तक आत्महत्या में परिवर्तीत होने लगा है. तो दुसरी तरफ बडे दुख के साथ हमें कहना पड रहा है कि, आज तक सरकार तथा पुलिस ने दहेज विरोधी कानून का उल्लंघन करने के जुर्म में किसी पर अपनी तरफ से मुकदमा चलाया नहीं है. क्या मंत्रियों, प्रतिष्ठित व्यावसायियों या समाज के उच्च तबके में बजनेवाले विवाह के ढोल सरकार के कानों को सुनाई नहीं देते? क्यों शादी में होनेवाली लेन-देन को भ्रष्टाचार के साथ जोडा जाता? इस से सामाजिक प्रणलियों की मानसिकता स्पष्ट होती है. ऐसी स्थिति में केवल कानून और पुरूष प्रधान संस्कृति को दोष देने तथा कानून में सुधार करने से इस समस्या का हल निकलनेवाला नहीं है. इसपर भी हमें चिंतन करने की आवश्यकता है. आज महिला उत्पीडन और दहेज विरोधी कानून को लेकर भारतीय स्त्रियों में दो तरह की मानसिकताओं का निर्माण होने लगी है. जिसपर हमें चिंतन करने की आवश्यकता है. एक ओर पढी-लिखी तथा नौकरी पेशा करनेवाली महिलाएँ घर में हर तरह की

जादाती को आँखे मूँदकर सहती दिखाई देती है. उसके खिलाफ आवाज उठाती नजर नहीं आती. जब पानी सीर के उपर से गुजरने लगता है, तब हंगामा शुरू करने लगती है. समय रहते हम इस बीमारी से छुटकारा पा सकते है, लेकिन ऐसे होता हुआ कम ही दिखाई देता है. तो दुसरी ओर कुछ असंतुष्ट पत्नियाँ अपनी मनमानी करने, जिम्मेदारियों से पींड छुडाने, प्रतिशोध लेने तथा पति और ससूराल के अन्य सदस्यों से मुक्ति पाने के लिए दहेज विरोधी कानून का अस्त्र की तरह प्रयोग करने लगी है. आज अदालत में दहेज उत्पीडन के नाम पर झूठे मुकदमें सबसे अधिक दर्ज होने लगे है. पत्नी की हरकतें, जादाती, परिवार के सदस्यों से परहेज और धमकियों से पीडित प्ररूषों की संख्या दिन-ब-दिन बडने लगी है. पत्नी पीडित पुरूषों के दिल्ली और औरंगाबाद में निकले जुलूस किसके प्रतिक है. आदाल के सामने इस तरह के कई मामले आ जाने के कारण उसने जुलाई, २०१७ में एक केस की सुनवाई करते समय स्पष्ट रूप से कहा - "अब समय आ गया है, जब बेगुनाहों के मानवाधिकार का हनन करनेवाले इस तरह के मामलों की जाँच की जाए."[०३] ऐसा कहते हुए सभी राज्यों को पहले मामले की जाँच-पडताल और बादमें गिरफ्तारी करने के निर्देश दिए. ऐसी अगर महिलाओं की मानसिकता बनेगी, तो कैसे काम चल सलेगा? इससे धन, समय और जीवन बर्बादी की कगार पर ही पहुँचनेवाला है. इससे किसी का भी कल्याण होनेवाला नहीं है.

हमारे देश में दहेज विरोधी कानून को कुछ लोगों ने उद्योग के रूप में अपनाना शुरू किया है. जरा-जरासी बात पर पति-पत्नियों में होनेवाले झगडों को लेकर महिला संगठन, वकिल, भ्रष्ट विधि प्रवर्तन अधिकारी आदि अपने-अपने स्वार्थ में आकर फायदा उठाते नजर आ रहें है. जिसपर टिप्पन्नी करते हुए लिखा है - "समाज में ऐसे शक्तिशाली निहित स्वार्थ और सामाजिक शक्तियाँ जिन्हें डरे हुए मुलाजिमों के होने मात्र से भी बडे फायदे है. इन डरों को और बढावा देते है और देती है. नारिवादियों, वकिलों, भ्रष्ट विधि प्रवर्तन अधिकारीयों, मीडिया, पत्नियों (,) और उनके माता-पिताओं से निर्मित एक अदद उद्योग खडा है. जिसे ४९८ अ उद्योग की संज्ञा देना इसलिए गलत नहीं होगा कि इन सब को ४९८ अ प्रकरणों की तदाद बढने से वित्तीय लाभ है. अत: इन सभी का निहित स्वार्थ निर्दोश पुरूषों पर अपनी पत्नियों को सताने के इलजाम लगा देने में विद्यामान है."[०४] जब तक दहेज विरोधी कानून का इस्तेमाल लोग अपने फायदे के लिए करते रहेंगे, तब तक हमारे देश से दहेज प्रथा नष्ट कैसे हो सकती है? इसमें कहाँ है, पुरूष प्रधानता और पुरूषी मानसिकता?

संक्षेप में हम इतना ही कह सकते है कि, दहेज प्रथा, महिला उत्पीडन और स्त्री हत्या के लिए केवल पुरूष प्रधानता संस्कृति और पुरूषी मानसिकता को अदालत के कटघरे में खडा करने से समस्याओं का हल निकलनेवाला नहीं है. उसके लिए हमें वर्तमान परिस्थिति, सामाजिक प्रणालियाँ और भारतीय जनमानसिकता में सुधार लाने की दिशा में व्यापक योजनाओं को बनाने की तथा उसे प्रभावात्मक रूप से कार्यान्वित करने की आवश्यकता है. यह प्रथा स्त्री के स्वातंत्र्य, समता, बंधुता, न्याय, एकता और समानता का केवल अपमान ही नहीं करती, तो विवाह जैसे संस्कार को बदनाम करती हुई औरत की गरिमा का उल्लंघन भी करती है. इस लिए हमें अर्थ केंद्रित सम्माण और प्रतिष्ठा की बजाय दोनों की योग्यताएँ, अचार, विचार, व्यवहार और जीवनगत दृष्टिकोण की समानताओं को विवाह का अधार बनाने की आवश्यकता है. हमें बाजारवादी मूल्य और अभिजात लोगों की संवेदनाहीनता, धोखेबाजी के पक्ष को समाज के सामने लाते हुए विकास (भौतिक और आंतरिक (मूल्यगत)) की परिभाषा से सबको अवगत करने का प्रयास करना चाहिए. नहीं तो, नैतिक और चारित्र्यगत विकास के आभाव में भौतिक विकास विलासिता का पर्याय बनकर हमारे सामने आनेवाला है. हमें एक ऐसी सर्वसमावेशक व्यवस्था के निर्माण के लिए प्रयास करने की आवश्यकता है, जिसमें स्त्री और पुरूष को पद, प्रतिष्ठा, सम्माण और जीवनाधिकार एकसमान हो.

**संदर्भग्रंथ :-**


०१. www.pravakta.com
०२. www.panchjanga.com
०३. www.jansatta.com
०४. https://mehnat.in>hindi>what